Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2023 GISRRJ | Volume 6 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

सामाजिक–सांस्कृतिक अस्मिता के प्रतीक बिनोद बिहारी महतो : एक विवेचन

नागेश्वर प्रजापति
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद (झारखण्ड)

Article Info

Publication Issue :
Volume 6, Issue 1
January-February-2023
Page Number : 32-36

Article History
Accepted : 01 Feb 2023
Published : 25 Feb 2023

शोधसारांश : यह शोध आलेख मुख्य रूप से बिनोद बिहारी महतो के सामाजिक एवं सांस्कृतिक सुधार आंदोलनों में अवदान पर केन्द्रित है। चूंकि झारखण्ड आंदोलन की प्रमुख हस्तियों में वे एक थे इसलिए स्वाभाविक तौर पर उनके राजनीतिक जीवन का भी उल्लेख इस शोध आलेख में हुआ है। इसमें इस तथ्य की पड़ताल की गई है कि अलग झारखण्ड की मांग को लेकर जो आंदोलन हुआ वह सिर्फ राजनीतिक उद्देश्यों पर आधारित नहीं था बल्कि उसके पीछे इस क्षेत्र की सांस्कृतिक अस्मिता एवं सामाजिक विशिष्टता को बचाए रखने के उद्देश्य को लेकर भी यह आंदोलन हुआ था। बिनोद बिहारी महतो इस सामाजिक एवं सांस्कृतिक अस्मिता के संघर्ष के प्रमुख सूत्रधार और सिद्धांतकार थे। इस शोध आलेख में इन्हीं बिन्दुओं पर विचार किया गया है।

बीज शब्द : आंदोलन, अस्तित्व, जनजाति, प्रखर, ऐतिहासिक, लोकप्रियता, सांस्कृतिक, योगदान।

झारखंड आंदोलन आजाद भारत का सबसे बड़ा आंदोलन कहा जा सकता है क्योंकि यह सिर्फ राजनीतिक रूप से अलग राज्य का आंदोलन मात्र नहीं था बल्कि यह जनता के, यहाँ के सदियों से उपेक्षित, समाज की मुख्य धारा, सभ्य समाज के लिए अजूबा समझे जाने वाले आदिवासियों की आकांक्षाओं, जंगल और जमीन से जुड़े लोगों के जीवन संघर्ष, बल्कि अपने अस्तित्व के लिए जद्दोजहद करने वाली भोली–भाली, कथित रूप से सभ्य कहे जाने वाले समाज की नजर में मानवेतर रूप में देखी जाने वाली जनजातियों की अस्मिता के लिए आंदोलन था। विकास की आकांक्षा के लिए अलग राज्य की मांग के आंदोलन और भी हुए हैं, मगर यह देश का पहला अलग राज्य का आंदोलन था जिसका स्वरूप सिर्फ राजनीतिक नहीं, सामाजिक और सांस्कृतिक भी था।

मगर यहां एक बात साफ करने की जरूरत है कि जब हम झारखंड आंदोलन को अस्मिता का आंदोलन कहते हैं तो इसके दायरे में सिर्फ जनजातीय समुदाय के लोग नहीं आते हैं बल्कि वे गैर जनजातियां भी आती हैं जिनका झारखंड से भावनात्मक रुझान उतना ही प्रखर रहा है जितना जनजातियों का। यही नहीं, झारखंडी संस्कृति और भौगोलिक परिवेश की बात है तो झारखंड के बाहर भी यह संस्कृति विद्यमान रही है। एक उद्धरण प्रस्तुत है–

"..... चार राज्यों में विभाजित यह पठारी क्षेत्र सांस्कृतिक दृष्टि से जनजातीय प्रभुत्व की एक सामाजिक संस्कृति का निर्माण कर चुका है। समान भौतिक परिवेश, ऐतिहासिक विरासत और सदियों की

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Shauryam Research Institute. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

सहयात्रा से यह क्षेत्रीय संस्कृति विकसित हुई है जो झारखंड क्षेत्र की भौगोलिक सीमाओं के बाहर की मैदानी संस्कृति से अलग है। प्रथमतः यह जनजातीय मूल की संस्कृति है जिसे सदानी जातियों ने भी प्रभावित और स्वीकृत किया है।"[1]

यह बात और है कि इस आंदोलन में उनकी भी उतनी ही बराबर की भूमिका रही है जो भले ही जनजातियों की सूची में नहीं हैं मगर झारखंड की जमीन और जंगल, नदियों–पहाड़ों से उनका भी उतना ही जुड़ाव रहा है। ऐसी कई झारखंडी जातियां और उनके बीच से उभर कर आये नेता हैं जिन्होंने इस ऐतिहासिक आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन्हीं में लोकप्रियता के शिखर पर माने जाने वाले नेता, समाज–चिंतक एवं सुधारक तथा शिक्षा का प्रसार करने वाले स्व० बिनोद बिहारी महतो हैं जिनका मूल्यांकन उस रूप में नहीं हुआ जिस रूप में होना चाहिए था। इस लेख में हम उनके वैचारिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक योगदान के बारे में चर्चा करेंगे।

आम तौर पर माना जाता है कि झारखंड आंदोलन के मुख्य कारण राजनीतिक थे। अर्थात् यह माना जाता रहा है कि बिहार के साथ रहने के कारण झारखंड के निवासियों को सत्ता में समुचित भागीदारी नहीं मिल पाती थी, न ही विकास–योजनाओं का समान लाभ यहां के लोगों को मिल पाता था। लेकिन वास्तविक समस्या यही नहीं थी, हालांकि कारणों में ये भी थे। लेकिन सिर्फ ये ही कारण नहीं थे, बल्कि सबसे महत्वपूर्ण वह अस्मिता बोध था जो झारखंड के निवासियों को बेचैन करता था। यहां के लोग अपनी मिट्टी, नदी, पहाड़ और जंगलों से भावनात्मक स्तर पर जुड़े हुए हैं और अपनी संस्कृति, भाषा, जीवन शैली और रीति–रिवाजों के प्रति अति संवेदनशील हैं। उन्हें यह बिल्कुल सहन नहीं होता कि बाहर से आये लोग उनकी जीवन शैली, सांस्कृतिक और धार्मिक विश्वासों को प्रभावित करे। दूसरी ओर स्थिति यह है कि ईस्ट इंडिया कंपनी के झारखंड क्षेत्र में प्रवेश के साथ ही यहां देशी और विदेशी लोगों की आवाजाही शुरू हुई और उनका एकमात्र उद्देश्य था प्राकृतिक संसाधनों से भरे इस प्रदेश के जंगल और जमीन के नीचे मौजूद अकूत खनिज की धुंआधार लूट। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो बाहरी लोगों को यहां के सदान हों या आदिवासी, हमेशा नापसंद करते रहे और इन्हें शत्रु के रूप में देखते रहे, फिर चाहे वह विदेशी लोग हों या देश के दूसरे हिस्सों से आने वाले सूदखोर, महाजन, ठेकेदार या माफिया। इन सबने लगातार इस प्रदेश का शोषण ही किया, यहां किसी भी तरह के विकास से इनका कोई लेना–देना नहीं रहा। जिस समय अंग्रेजों का प्रवेश उस समय के छोटानागपुर और आज के झारखंड में हुआ उसके पूर्व तक यहां के आदिवासी और सदान कृषि क्षेत्र में स्वावलंबी थे और ये समृद्ध किसान माने जाते थे। अंग्रेजों ने इस क्षेत्र में आधारभूत ढांचे में विकास के जो कार्यक्रम चलाए उनसे फायदा बाहरी लोगों का ही ज्यादा हुआ, यहां के किसान आर्थिक रूप से बदहाल हो गए। बाजार और व्यावसायिक संस्कृति के उदय ने शोषण को ही बढ़ावा दिया। जिन खेतों में यहाँ के लोग खेती करते थे उनका व्यावसायिक उपयोग होने से कई हिस्सों में खेती पर प्रतिबंध लग गया और यहां की पारंपरिक अर्थव्यवस्था प्रभावित हुई। इस प्रकार यहाँ के सामाजिक–सांस्कृतिक ढांचे और पारंपरिक अर्थव्यवस्था में टूट–फूट उत्पन्न हुई। विद्याभूषण कहते हैं–

"ब्रिटिश शासन से पहले यह क्षेत्र सामन्तों और जमींदारों द्वारा नियंत्रित होता था। मुगल काल के बाद यहाँ के सामन्तों–जमींदारों ने बिहार और उत्तर भारत के लोगों को यहां आकर बसने के लिए बुलाया ताकि बाहरी दुश्मनों और अशांत आदिवासियों से उनकी रक्षा हो सके।"[2]

यहाँ यह भी उल्लेख करना जरूरी है कि विदेशी ईस्ट इंडिया कंपनी और देशी महाजनों, ठेकेदारों के बीच शुरू से ही एक गठबंधन बना रहा, यही कारण है कि यहां के समाज और संस्कृति में टूट–फूट में इन सबकी समान भूमिका थी। इस लूट करने वाले गिरोह का नेतृत्व कंपनी राज के हाथों में था और इन्होंने झारखंड की संस्कृति और हर किस्म की परंपरा को नष्ट करने की कोशिश की। आदिवासी समाज की जो समतावादी सामाजिक संरचना थी उसे बर्बाद करने की हर संभव कोशिश थी। पंचायती व्यवस्था, पड़हा, मानकी–मुंडा प्रथा, सबको इन्होंने खत्म करने का काम किया। इसी के कारण सरदारी आंदोलन, खरवार आंदोलन, बिरसा आंदोलन और टाना भगत जैसे आंदोलन घटित हुए। इन आंदोलनों के लक्ष्य सिर्फ आर्थिक नहीं थे बल्कि सांस्कृतिक पक्ष भी जुड़े हुए थे। इस प्रकार झारखंड आंदोलन की पृष्ठभूमि निर्मित हुई।

इन्हीं परिस्थितियों में कई आंदोलन घटित हुए जिनकी चर्चा ऊपर की गई। आर्थिक विकास के नाम पर यहां की भाषा, संस्कृति, परंपराओं और जीवन शैली पर हमले किये जा रहे थे और इसकी प्रतिक्रिया भी आदिवासी एवं सदान समाज में हो रही थी। इन्हीं परिस्थितियों के बीच वर्तमान झारखंड के कुड़मी समुदाय में बिनोद बिहारी महतो का जन्म हुआ।

यहाँ थोडा ठहर कर कुड़मी समाज की सामाजिक–राजनीतिक स्थिति पर विचार कर लेना प्रासंगिक होगा। कुड़मी समाज आदिवासियों के समान ही झारखंड में अपनी जड़ें रखता है। झारखंड में इस समाज की अहमियत को नकारा नहीं जा सकता। मानभूम जिला को चुनावी राजनीति के अंतर्गत ही दो भागों में बांट दिया गया जिससे झारखण्ड आंदोलन कमजोर पड़ जाय। पुरुलिया समेत पंद्रह थानों को पश्चिम बंगाल में मिलाने का निर्णय लिया गया। इस तरह से बाँटकर कुड़मी समाज की शक्ति कम करने की चाल चली गई। 1957 में लोकसभा चुनाव के समय यह राजनीति सतह पर आ गई क्योंकि यह सवाल सिर्फ कुड़मी समाज के अस्तित्व से जुड़ा हुआ नहीं था बल्कि पूरे झारखंड आंदोलन से जुड़ा हुआ था। 1957 के चुनाव में सभी राजनीतिक दल अपनी–अपनी स्थिति को मजबूत करने में लगे थे। झारखंड पार्टी भी अपनी स्थिति को मजबूत करने में लगी हुई थी हालांकि पुरुलिया अलग होने से इसपर प्रभाव जरूर पड़ा था। लेकिन इसमें झारखंड आंदोलन के लोकप्रिय नेता जयपाल सिंह का राजनीतिक रवैया कुछ ढीला–ढाला था। इसकी तस्दीक तब हुई जब राँची की लोकसभा सीट से झारखंड पार्टी के मीनू मसानी, जो स्वयं मुंबई के बड़े व्यावसायिक घराने से ताल्लुक रखते थे और वास्तव में समाजवादियों से संबद्ध थे, को उम्मीदवार बनाया गया। इसीलिए इनको जयप्रकाश नारायण का भी समर्थन मिला। इसी तर्ज पर जमशेदपुर सीट से एक उद्योगपति डिकोस्टा को उम्मीदवार बनाया गया, हालांकि वे चुनाव हार गए।[3]

वास्तव में जयपाल सिंह, जो झारखंड आंदोलन के बहुत प्रभावी नेता थे, उन्हें कांग्रेसी नेतृत्व ने झांसा दिया और इसी झांसे में आकर वे इस पार्टी की मूल विचारधारा से भटक गए थे और कांग्रेस में पार्टी का विलय कर दिया।[4] ये झारखंड पार्टी के बिखराव के दिन थे।

तात्पर्य यह कि झारखंड हर दृष्टिकोण से उथल–पुथल के दौर से गुजर रहा था। इसी संक्रमण काल में धनबाद में बिनोद बिहारी महतो का प्रादुर्भाव हुआ। ये एक गरीब परिवार से थे लेकिन पढ़ाई–लिखाई में गहरी रुचि रखने के कारण घोर आर्थिक कठिनाइयों से संघर्ष करते हुए इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और आगे की पढ़ाई में जुट गए। किंतु इसमें निरंतरता नहीं थी। गरीबी के कारण मैट्रिक पास करने के बाद ही इनको क्लर्क की नौकरी करनी पड़ी और आठ साल तक वे इस नौकरी में रहे।

इसके बाद इन्होंने नौकरी छोड़ दी और आगे की पढ़ाई फिर से शुरू कर दी। पहले राँची से कॉलेज की पढ़ाई और फिर पटना से वकालत की पढ़ाई की। इसके बाद उन्होंने धनबाद में वकालत शुरू की। यही वह साल था जब मानभूम जिले का विभाजन किया गया था जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि छोटानागपुर में अंग्रेजों और उनके पीछे–पीछे आये बाहरी महाजनों, सूदखोरों आदि यहां आए थे और यहां के अशिक्षित, भोले–भाले लोगों का शोषण करते थे, वे खुद को अभिजात और यहां के लोगों को हीन समझते थे। बंगाली समुदाय के लोग भी इसी रूप में यहाँ आए थे और स्वाभाविक रूप से बिनोद बिहारी महतो को उनका सामना करना पड़ा था। उन्होंने कचहरी में देखा था कि उनके समाज के लोग बिना खाये–पीये कचहरी में केस मुकदमे के लिए पड़े रहते थे। उनके वैचारिक निर्माण के प्रसंग में इन बातों का बहुत महत्व है।

बहरहाल अपनी मेधा और सहज स्वभाव के बल पर वे अपने सहकर्मियों के बीच अच्छे से जुड़ गए थे। इन्होंने अपने समय और अपने समाज से जुड़ी हर किस्म की समस्याओं पर गहराई से विचार किया और उनके निदान ढूँढने की कोशिश की। गहन सोच–विचार के बाद ये इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि छोटानागपुर के सदान हों या आदिवासी, समान रूप से शोषण, अत्याचार, आर्थिक बदहाली एवं अपनी सांस्कृतिक अस्मिता पर हमले से गुजर रहे हैं। इसके कारणों पर भी इन्होंने गहराई से विचार किया और पाया कि शिक्षा का अभाव एक बहुत बड़ा कारण है। भोले–भाले आदिवासी हों या सदान, शिक्षा का भारी अभाव इनमें रहा है। उन्होंने इसके लिए बाकायदा अभियान शुरू किया और सफलतापूर्वक यह अभियान चला। इसके लिए इन्होंने कई सामाजिक संगठनों की स्थापना की जिनमें एक उल्लेखनीय संगठन था 'शिवाजी समाज'। इस समाज की स्थापना के माध्यम से इन्होंने शिक्षा का प्रसार शुरू किया और सामाजिक–धार्मिक कुरीतियों के खिलाफ अभियान शुरू किया। कहने की जरूरत नहीं कि इस स्थिति में आने का कारण था कि बचपन से ही सामाजिक–सांस्कृतिक विसंगतियों को देखकर इनके भीतर गहरी बेचैनी उत्पन्न होती थी। इन्होंने अपने समाज के लोगों में जागरण लाने के लिए उनके मुकदमे लड़े। इस प्रकार अपने समाज के प्रति इन्होंने जो काम किया उनसे इनकी छवि का निर्माण हुआ। अपनी इसी अर्जित छवि के बल पर इन्होंने अपने समाज के लिए एक जननायक के रूप में पहचान बनाई और इसी पहचान के बल पर वे आगे चलकर न सिर्फ अपने समाज में जागरण के वाहक बनकर उभरे बल्कि पूरे झारखंड आंदोलन के अग्रदूत बने।

आंदोलनकारी के रूप में इन्हें उभरने का मौका मिला बोकारो इस्पात कारखाना के लिए जमीन अधिग्रहण के मामले में। जमीन अधिग्रहण के मामले को लेकर लोग इनके पास आते थे। उनके लिए सरकार ने जो मुआवजे तय किये थे, उनकी राशि देखकर बिनोद बाबू को बहुत आश्चर्य होता। इनके राजनीतिक जीवन की शुरुआत प्रारंभिक तौर पर यहीं से हो गई थी। यह शुरुआत एक वकील के तौर पर हुई। इन्होंने विस्थापितों के मुआवजे का मुकदमा लड़ना तय किया और इसमें इन्हें अच्छी सफलता मिली। वैसे शुरुआत तो पढ़ाई के दौरान ही हो गई थी। 1952 में इन्होंने प्रथम विधान सभा का चुनाव लड़ा। यह चुनाव झरिया के राजा के खिलाफ लड़ा था और स्वाभाविक था कि उनका जो दबदबा था उसके कारण ये हार गए। राजनीति की दूसरी पारी इनकी शुरू हुई 1962 में। उन दिनों उस क्षेत्र में कम्युनिस्ट पार्टी का कोई जनाधार ग्रामीण क्षेत्र में नहीं था। राजनीतिक दलों के रूप में लोग या तो कांग्रेस को जानते थे या झारखंड पार्टी को । इस दृष्टि से देखा जाय तो इन्होंने शून्य से उस क्षेत्र में कम्युनिस्ट राजनीति की शुरुआत की। चूंकि वकालत के पेशे के कारण क्षेत्र में इनकी पहचान बन गई थी और लोगों के बीच ये काफी हिल–मिल गए थे इसलिए पार्टी की नींव डालने में ज्यादा कठिनाई नहीं हुई।

पार्टी के काम से इन्हें गाँवों वगैरह में आना–जाना पड़ता था इसलिए इन्होंने लोगों के जीवन को करीब से देखा। लोगों की स्थिति भयावह थी। गरीबी तो थी ही, शिक्षा की स्थिति भी दयनीय थी। 90 प्रतिशत से ज्यादा लोग अनपढ़ थे। शराबखोरी आम बात थी। महाजनों का आतंक ऐसा था कि अधिकतर लोगों की जमीनें गिरवी पड़ी थी। लोग कई कई शादियाँ करते थे। गांवों के कुड़मी, आदिवासी और दलित सबकी स्थिति एक जैसी थी। कोलियरी के आस–पास के लोगों की हालत और अधिक खराब थी। गुंडों का आतंक था। ठेकेदार, महाजन, शराब माफिया सब मिलकर इनका शोषण करते थे। बाल विवाह, दहेज प्रथा जैसी कुप्रथाएँ चरम पर थी। कुल मिलाकर सामाजिक एवं आर्थिक रूप से लोग एकदम सदियों पीछे थे।

विनोद बाबू का वास्तविक रूप से राजनीतिक सफर सामाजिक सुधार और लोगों को शोषण से मुक्ति के लिए जागरण अभियान और सांस्कृतिक आंदोलन से ही शुरू हुआ। इन्होंने शिक्षा के प्रसार के लिए कई काम किये। 1969 में इन्होंने 'शिवाजी समाज' का गठन किया और इसका सम्मेलन तोपचांची मानटांड में 6 अप्रैल 1969 ई० में हुआ।[5] इस संगठन के माध्यम से इन्होंने राजनीतिक कार्यों के साथ–साथ सामाजिक–सांस्कृतिक सुधार आंदोलनों को भी आगे बढ़ाया। इसके बाद इनका राजनीतिक सफर आगे बढ़ता गया और झारखंड राज्य के लिए संघर्ष करने वाले प्रमुख राजनीतिक हस्तियों में इनका नाम इतिहास में दर्ज हुआ।

निष्कर्ष : बिनोद बिहारी महतो वास्तविक अर्थों में जमीन से जुड़े नेता थे। आम जनता की जिन समस्याओं और जीवन संघर्षों को लेकर ये राजनीति में आये, वे उनके खुद के जीवन संघर्ष थे। उन्होंने उन सारी तकलीफों को करीब से देखा ही नहीं था बल्कि भोगा भी था। अपने सार्वजनिक जीवन का प्रारंभ उन्होंने सीधे राजनीतिक आंदोलनों से न करके लोगों के सामाजिक, आर्थिक प्रश्नों को लेकर संघर्ष से किया था इसलिए वे सिर्फ राजनेता या आंदोलनकारी के रूप में ही नहीं बल्कि एक समाज सुधारक के रूप में भी जाने जाते हैं।

संदर्भ संकेत :–

1. विद्याभूषण (2018). झारखंड : समाज, संस्कृति और साहित्य. झारखंड झरोखा, रांची, पृ० 18.
2. विद्याभूषण (2012). इतिहास के मोड़ पर झारखंड. प्राक्कथन, क्राऊन पब्लिकेशन,रांची.
3. बलवीर दत्त (2014). कहानी झारखंड आंदोलन की. क्राऊन पब्लिकेशन, रांची पृ० 90.
4. डॉ० विनय कुमार (2012). बिहार–सृजन से शताब्दी वर्ष. बिहार राज्य अभिलेखागारनिदेशालय, पटना, पृ० 229.
5. शैलेन्द्र महतो (2015). झारखंड की समर गाथा. दानिश बुक्स, गाजीपुर, पृ० 209.